चित्तवृत्ति निरोधो योगः

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

योग भारत की पुरातन सम्पदा है। भारत के ऋषियों–मुनियों ने योग साधना के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया था। योग क्या है? योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है। चित्त चंचल नहीं होता उसमें उठने वाली वृत्तियां चंचल होती हैं। जैसे किसी तालाब में स्थिर जल में तरंगें उठती रहती हैं वैसे ही चित्त में तरंगे उठती रहती हैं। उन तरंगों को बस में करने के लिए योग सबसे श्रेष्ठ साधन है। योग के द्वारा जब वृत्तियां शांत हो जाती हैं तो चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त के निर्मल होने से एकाग्रता बढ़ती है। इसी के द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। योग की आठ अवस्थाएं हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्याान और समाधि। यम प्रथम अवस्था है और समाज अन्तिम। समाज ही प्राप्त हो जाने पर आदमी मुक्त हो जाता है।

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत चित्त का महत्वपूर्ण स्थान है। दार्शनिक दृश्टि से ही नहीं, प्रत्युत् मनोवैज्ञानिक, व्यवहारिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी मनस्तत्त्व का योगदान विलक्षण है। योगदर्शन के अन्तर्गत चित्त एवं मन में भेद नहीं किया गया है। यह कहना समीचीन होगा कि मानव के समस्त क्रियाकलापों का केन्द्रबिन्दु चित्त होने के कारण, एक अच्छा मानव बनने के लिए चित्त का परिष्कृत होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है, क्योंकि चित्त ही कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को सतत कार्यों में प्रवृत्त करता है। इस प्रकार सत्कर्म का प्रेरक एवं प्रवर्त्तक होने के कारण मन ही मोक्ष का कारण भी है। इसका कारण यह है कि ज्ञान साध्य मोक्षार्थ अपेक्षित चित्त शुद्धि सर्त्कम के द्वारा ही सम्भव है। यहीं, यह भी उल्लेखनीय है, कि चित्त की परिष्कृति एवं शुद्धि के लिए सात्त्विक आहार भी अपेक्षित है। जैसा आहार होगा, वैसा ही चित्त का निर्माण होगा।

जब कोई व्यक्ति किसी आध्यात्मिक सत्संग में जाता है तो उसके धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों चित्त पर पडे धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रभावों में दृढता आती है, यही वृत्ति है। इस

प्रकार संस्कार वृत्ति के जनक हैं। इसी प्रकार वृत्ति संस्कारों की जननी है, क्योंकि सद्वृत्ति सत् संस्कारों की जननी है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संस्कार एवं वृत्ति का चक्र चलता रहता है। इससे यह निष्कर्ष भी प्राप्त है कि सात्त्विक आहार एवं विहार से सात्त्विक संस्कारवान् एवं सात्त्विकवृत्तिसम्पन्न चित्त का निर्माण होता है, तथा राजस एवं तामस आहार–विहार से रजोगुणी एवं तमोगुणी चित्त का निर्माण होता है।

मनुष्य के सात्त्विक, राजसिक, तामसिक एवं विविध अन्य संस्कारों से वासित चित्त जन्म–जन्मान्तर तक जाता है, या यों समझिये कि मनुष्य के चित्त पर प्रतिबिम्बित संस्कार वासना रूप में स्थित होकर जन्म जन्मान्तर तक जाते हैं। यह वासना ही पुनः जन्म का कारण बनती है। जब तक सदसद्रूपिणी वासना का रूप नहीं होता, तब तक मोक्ष सम्भव नहीं होगा–'मोक्षः स्याद् वासनाक्षयः' इससे यह भी ज्ञात है, कि मनुष्य जो आज है, वह इस जन्म का नहीं, अपितु जन्म–जन्मान्तर का है–**अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्**। ज्ञान प्राप्ति के लिए जिनमें संस्कारों का संग्रह किया जाय, ऐसे बहुत से जन्मों का अंत होने पर ज्ञानी परिपक्व ज्ञान प्राप्त करता है, तथा परमात्म साक्षात्कार करता है।

यहां चित्तवृत्तिनिरोध के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है। पतंजलि ने चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा है। यहां निरोध का अर्थ एकाग्रावस्था एवं निरुद्ध अवस्था के निरोध से लिया है। किन्तु सामान्य रूप से निरोध का अर्थ संयम है। मन का संयमित होना परम आवश्यक है। अतः अष्टांगयोग के अन्तर्गत प्रथम यम को ग्रहण किया है। यम से संयम का ही अभिप्राय है। चित्त को दुष्कृत्यों से रोकना संयम ही है। किन्तु चित्त को दुष्कृत्यों से रोके कौन? क्योंकि चित्त तो पूर्व संस्कारों के अनुसार दुष्कृत्यों एवं सत्कृत्यों में प्रवृत्त होता है। यहां यह कहा जा सकता है कि चित्त ही चित्त के निग्रह में समर्थ है–**मनः एव समर्थं हि मनसो दृढनिग्रहे।**

मन को रोकने वाला विवेकपूर्ण मन है। उदाहरणार्थ एक हि मन स्वाध्याय से विरत होना चाहता है, और वही पुनः स्वाध्याय में प्रवृत्त होता है। दूसरी स्थिति मन की विवेकपूर्ण स्थिति है। योगदर्शन में मन, बुद्धि, एवं चित्त में भेद नहीं किया गया है, अतः मन ही अविवेकपूर्ण और विवेकपूर्ण दोनों है। किन्तु उत्तरकाल में अन्तःकरणचतुष्टय के अन्तर्गत विवेकधारिणी बुद्धि है।

अतः बुद्धि ही दुष्कृत्य में प्रवृत्त मन को विवेक होने पर सत्कृत्य की और प्रवृत्त करती है। वस्तुतः कर्म के प्रति चेष्टावान् होना, चित्त का स्वभाव है, किन्तु समस्या चित्त के सत्कर्म में प्रवृत्त होने की है–'युक्तचेष्टस्य कर्मसु' जिन मनुष्यों का चित्त सत्कर्म में चेष्टावान् है–प्रवृत्त है, वे ही सन्मानव हैं, तदितर पशुसदृश हैं– **धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।** चित्त के संयमित होने पर शरीर एवं मन का स्वस्थ्य रहना स्वाभाविक है। क्योंकि मन के संयमित होने पर संयमित आहार–व्यवहार होने के कारण शरीर एवं मन दोनों स्वस्थ्य रहते हैं। फलतः सत्कर्म चित्तशुद्धि के हेतु बनते हैं, तथा चित्तशुद्धि आत्मनिष्ठता एवं मोक्ष में साक्षात् हेतु सिद्ध होती है।